अज्ञेय के साहित्य में पुरातनता में नवीन सन्दर्भों की पड़ताल

डॉ0 सियाराम,

एसोव प्रो0, हिन्दी विभाग

तिलक महाविद्यालय,औरैया,उ.प्र.

हिन्दी की छायावादी कविता में जीवन–सौन्दर्य के प्रति आकर्षण का भाव तो विद्यमान था किन्तु वह केवल कलात्मक सौन्दर्य से नयनों को ही अभिराम लगती थी। उसका मानव जीवन में कोई सार्थक उपयोग नही हो सका। छायावादी कवियों ने जीवन को केवल स्वप्न मात्र माना, उन्हें जीवन में सत्य एवं यथार्थ की गंध स्यात् कभी नही मिली। यही कारण है, छायावादी कविता के स्वप्न सत्य के ताप से झुलसने लगे और शनैः–शनैः जनसाधारण में इसके विरुद्ध सुगबुगाहट शुरू हो गयी। जीवन चेतना ने करवट बदली और साहित्य में नये अध्याय और नूतन जीवन मूल्य विकसित होने लगे। इसके मूल में प्रगतिवादी दृष्टि एवं शोषित–पीड़ितों के प्रति सहानुभति का भाव था। प्रयोगवाद के आते ही कविता के क्षेत्र में वैचारिकता और बौद्धिकता का दौर चल पड़ा। देखते ही देखते बिम्बों, प्रतीकों तथा उपमानों के मिथकीय प्रयोग होने लगे और छोटी कविताओं का फैशन चल पड़ा जिसे साहित्य में प्रयोगवादी युग कहा गया।

प्रयोगवादी नूतन काव्यधारा को जन्म देने और विकसित करने का अत्यधिक श्रेय 'अज्ञेय' जी को है। उन्होंने प्रयोगवादी कविता की प्रवृत्ति एवं चिन्तन पद्धति का न केवल सर्वाधिक विवेचन किया बल्कि तदनुरूप साहित्य सृजन भी किया। प्रथम काव्य संग्रह 'अग्रदूत' (1933 ई0) से ही उनके प्रयोगवादी स्वर सुनाई देने लगते हैं जो कालान्तर में चिन्ता (1942 ई0), इत्यलम् (1947 ई0), हरी घास पर क्षण भर (1949 ई0), बावरा अहेरी (1955 ई0), इन्द्रधनुष रौंदे हुए थे (1957 ई0), अरी ओ करुण प्रभामय (1959 ई0) और आँगन के पार द्वार (1959 ई0) आदि ग्रन्थों में निरन्तर प्रखर होते गये। इन संग्रहों की कविताएँ जीवन में व्याप्त विषमताओं और कुण्ठाओं से द्वन्द्व ही नहीं करती वरन् वास्तविक तथ्यों का उद्घाटन, आत्मान्वेषण एवं सत्यान्वेषण से भी संपृक्त हैं।

चूँकि अज्ञेय चिन्तनशील कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में वैचारिकता एवं चिन्तन के वे तत्त्व विद्यमान है जिनसे आज का मानव प्रभावित हो रहा है। अज्ञेय ऐसे सवालों का सामना करने को तत्पर दिखते हैं जो उनके समय में बल्कि सम्प्रति भी विद्यमान है। आधुनिक युगीन मनुष्य, व्यक्ति और समाज पर मध्ययुगीन चिन्तन (जीव, ब्रह्म, मायाा, जीवन, जगत आदि) से भिन्न हैं। अज्ञेय भी आधुनिक मानव की भाँति व्यक्ति को ही मूल्यों का प्रतिष्ठाता मानते है। तभी तो वे कहते हैं– ''समाज और व्यक्ति की परस्पर निर्भरता भी उन मूल्यों में से एक है जिसका सृष्टा और प्रतिष्ठाता मानव है। यह परस्परता विवेक पर आश्रित है और स्वतंत्रता के आधारभूत मूल्य की रक्षा और उसके विकास के लिए भी वांछनीय है।''[1] मानव मूल्य किसी व्यक्ति द्वारा ही बनाये जाते हैं और समयान्तराल पर बहूपयोगी होने के कारण समाज उन्हें अंगीकार कर लेता है। इस प्रकार के मूल्य सामाजिक ढाँचे के अनुकूल होने पर शीघ्र स्वीकृति पा जाते हैं जबकि विपरीत होने की स्थिति में उन्हें स्वीकृत होने में समय लगता है। समाज के प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने सामाजिक

दायित्वों का सम्यक् निर्वाह करे। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का स्पष्ट मानना है– ''समाज के प्रत्येक व्यक्ति का समाज के प्रति कुछ दायित्व होता है। समाज जितना ही कम विकसित हो उतना ही वह दायित्व अधिक स्पष्ट और अनिवार्य होता है – अविकसित समाज में विकल्प की गुंजाइश कम रहती है। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति का एक निश्चित धर्म होता है और जितना ही समाज अविकसित होता है, उतना ही वह धर्म रूढ़ और अनिवार्य।''[2]

अज्ञेय परम्पराधर्मी प्रयोग कर्त्ता कवि हैं। इसीलिए उनकी कविता में जाँच और पड़ताल की मानसिकता विद्यमान है। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक कवि है। तभी वे बदलते हुए परिवेश के प्रति पूर्ण सजग हैं। उन्हें नये भावों से सम्बन्ध स्थापन करना एवं उन्हें दूसरों पर व्यक्त करना बखूबी आता है। इसीलिए उनकी कविता में एक ओर तो अपने समय को उद्घाटित करने वाले जीवन सत्यों को प्रस्तुत किया गया है वहीं दूसरी ओर परम्परागत सत्यों को नये संदर्भों में परखा गया है।

अज्ञेय का 'अहं' एक ऐसी चेतना है जिसे उन्होंने सामाजिक–मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं से उत्पन्न नयी अवधारणा में व्यक्त किया है। उनका 'अहं' सजीव गतिशील तत्त्वों की पहचान करके सृजनात्मक भूमिका अदा करता है। अज्ञेय का 'अहं' रूढ़िगत अवधारणाओं को नकारता है और वर्तमान परिवेश के सन्दर्भ में एक क्रान्तिकारी भूमिका निभाता है। उन्होंने 'भग्नदूत' में इसका स्पष्ट वर्णन किया है–

कानन का सौन्दर्य लूटकर,
सुमन इकट्ठे करके
यों सुरक्षित नीहार कणों से
आँचल में मैं भरके,
देव! आऊँगा तेरे द्वार।
किन्तु नही तेरे चरणों में दूँगा वह उपहार।
तोड़ मरोड़ फूल अपने मैं
पथ में बिखराऊँगा,
पैरों से फिर कुचल उन्हें मैं
पलट चला जाऊँगा।[3]

यहाँ कवि का अहं पारस्परिक पुरानी रूढ़ि से विद्रोह करता है। वह फूलों को मात्र देवताओं पर चढ़ाने की वस्तु नही मानता बल्कि वह स्वयं फूलों से अपना पथ आच्छादित करना चाहता है। इसी प्रकार अज्ञेय का कवि अंधविश्वास को भी दृढ़ चुनौती देता है–

मंदिर तुम्हारा है/देवता हैं किसके ?
प्रणति तुम्हारी है/फूल झरे किसके ?
नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका,
मैं ही तो मन्दिर हूँ/ओ देवता! तुम्हारा।[4]

यहाँ मन्दिर, देवता, फूल, प्रणति आदि परम्परागत प्रतीकों का नये सन्दर्भ में प्रयोग किया गया है। जब कवि कहता है 'नहीं, नहीं मैं झरा, मैं झुका, मैं ही तो मन्दिर हूँ' तो वह स्पष्टतः पुरानी परम्परा को नूतन सन्दर्भ में देखने का प्रयास करता है। इसी प्रकार जब अज्ञेय समाज में व्याप्त रूढ़ियों तथा शोषण एवं अमानवीयता के पुराने ढाँचे को देखते हैं तो उनका 'अहं' आहत हो उठता है और वे इन अगतिशील जड़ तत्त्वों को ललकार उठते हैं–

तुम सत्ताधारी, मानवता के शव पर आसीन।
जीवन के चिर रिपु, विकास के प्रतिद्वन्द्वी प्राचीन।
तुम, श्मशान के देव! सुनो, यह रणभेरी की तान'
आज तुम्हें ललकार रहा हूँ, सुनो घृणा का गान।[5]

अज्ञेय जहाँ कहीं भी मनुष्य का अपमान होते देखते हैं उनका मन विद्रोह कर उठता है। उनका यह विद्रोह सदियों से चला आ रही अमानवता के खिलाफ एक मानवीय दृष्टि प्रदान करता है।

इसीलिए अज्ञेय 'सेक्स' सम्बन्धी रुढ़िवद्ध नैतिकता को नकार कर प्रेमानुभूति को नये सिरे से परिभाषित करते हैं–

थोड़ी देर/खुली–खुली/आँखें मिलीं
बिजलियों– से दौड़े संकेत।
सदियों की संस्कारों की/नीवें हिलीं
अभिप्रेत हुए प्रेत।
न देहें हिली–डुलीं/न कोई बोला,
गुँथ गयीं दो दुरन्त/ जिजीविषाएँ/फिर पलटी तुरन्तः
सहजता पर/ हम लौट आये
कौंध में/मैंने पहचाना/मेरे भीतर जो असुर है।
रुंधा, छटपटाता/प्रबल पर भोला।[6]

'यौन और प्रेम' के भाव प्राचीन काल से ही साहित्य के विषय बनते रहे हैं किन्तु वर्तमान सन्दर्भ के विकास के साथ–साथ यौन और प्रेम जैसे मूल राग सम्बन्धी अवधारणा भी बदल गयी है। इस सम्बन्ध में अज्ञेय स्पष्ट कहते हैं– ''हमारे मूल राग–विराग नही बदले, प्रेम अब भी प्रेम है और घृणा अब भी घृणा। यह साधरणतया स्वीकार किया जा सकता है पर यह भी ध्यान में रखना होगा कि राग वही रहने पर भी रागात्मक सम्बन्धों की प्रणालियाँ भी बदल गयीं हैं।''[7]

स्पष्ट है कि मौन एवं प्रेम जैसे मूल रागों को अज्ञेय नवीन संदर्भ में देखते हैं। वे इन्हें किसी रहस्य में न लपेटकर नितान्त मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखने की प्रेरणा देते हैं। वे मनुष्य की मूल वृत्तियों में नैतिक–अनैतिक के बन्धन को अस्वीकार करते हैं तथा इन्हें अपराधबोध से स्वतंत्र करते हुए स्पष्ट कहते हैं–

आह, मेरा श्वास है उत्तप्त,
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त
तुम कहाँ हो, नारी ?[8]

'तुम कहाँ हो, नारी' यह कहना आधुनिक मनोविज्ञान की देन है जहाँ सेक्स को चरित्रहीनता नही माना जाता है। यह सम्बन्ध आधुनिक काल में मुक्त प्रेम के मनोवैज्ञानिक सत्य से कवि को परिचित कराता है। अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि स्त्री–पुरुष सम्बन्धों को मनोवैज्ञानिक आधार पर देखती है। इनकी कविता में यौन और प्रेम की अनुभूति लौकिक स्तर पर अभिव्यक्त हुई है–

मुझे सब कुछ याद है। मैं उन सबों को भी
नही भूला! तुम्हारी देह पर जो
खेलती हैं अनमनी मेरी उंगलियाँ– और जिन का खेलना
सच है, मुझे जो भुला देता हैं–
सभी मेरी इन्द्रियों की चेतना उन में जगी है।[9]

अज्ञेय प्रेम को छायावादी कवियों की भाँति अमूर्त व वायवी न बनाकर मुझे मूर्त्त जीवन से जोड़ते हैं। सांसारिक प्रेम में आशा–निराशा, आशंका–कुण्ठा सभी विद्यमान रहती हैं तथा यही प्रेम को वास्तविकता से जोड़ती हैं। अज्ञेय के लिए प्रेमिका इसी दुनिया की जीती जागती स्त्री है, इसीलिए वह स्पष्ट कहते हैं–

इसी जमुना के किनारे एक दिन
मैने सुनी थी दुःख की गाथा तुम्हारी
और सहसा कहा था बेबसः
तुम्हें मैं प्यार करता हूँ।
गहे थे दो हाथ मौन समाधि में,
स्वीकार की।[10]

अज्ञेय की कविता में प्रेम, वासना और विवेक जीवन के यथार्थ से टकराते हैं। यहाँ प्रेम मात्र भोग का ही नहीं अपितु संघर्ष का भी प्रतीक है। प्रेम और यौन मानव जाति के ही नही वरन् सम्पूर्ण जीव–जगत के शाश्वत भाव हैं। इनकी

बदलती हुई मान्यताओं के प्रति अज्ञेय सचेत हैं। वे इन भावों को फ्रायड के मनोविज्ञान के अनुसार मानवीय रूप में ही देखते–परखते और स्वीकारते हैं तभी तो कहते हैं–

मैंने तुम्हें छुआ है/मेरी मुट्ठियों में भरी हुई तुम

मेरी उंगलियों बीच छनकर बही हो–

कण प्रतिकण आप्त, स्पृष्ट, मुक्त।

मैंने तुम्हें चूमा है

और हर चुम्बन की तप्त, लाल, अयस्कठोर छाप

मेरा हर रक्त–कण धारे है।''

'यौन और प्रेम' प्रत्येक युग और समाज में चर्चित एवं चित्रित होते रहे हैं। इनका अपना एक सामाजिक सन्दर्भ रहा है। इन सम्बन्धों से जहाँ सामाजिक ताना–बाना प्रभावित होता रहा है वहीं ये सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों के निर्धारण में भी महत्त्वपूर्ण रहे हैं। समय–समय पर इनका रूप बदलता रहा हैं किन्तु कला के स्तर पर स्त्री–पुरुष सम्बन्धों एवं यौन–प्रेम रागों का नकार ही अधिक मिलता है। आधुनिक कवि इस सच्चाई से मुँह न फेरकर इन्हें असली रूप में देखता है। अज्ञेय की कविता में स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को रूढ़ि एवं परम्परा से मुक्ति मिली है। उनके अनुसार प्रेम की रागात्मक अवधारणा की अपेक्षा यौन–तृप्ति का एक क्षण अधिक सार्थक व अच्छा है क्योंकि इसमें छद्म मूल्यों का कोई आवरण नही होता। यही है अज्ञेय की प्रयोगशील दृष्टि।

व्यक्ति की इयत्ता या अस्तित्त्व का समाज में सम्पूर्ण विलयन समाज एवं व्यक्ति किसी के हित में नही हो सकता है क्योंकि समाज का सतत् विकास जागरुक व्यक्तियों पर ही निर्भर है। विवेक सम्पन्न व्यक्ति अपना अस्तित्त्व बरकरार रखते हुए समाज को दिशा देने हेतु रूढ़ियों से टकराता है, असहमत होता है। अज्ञेय जी इस तथ्य से पूर्ण परिचित है, तभी वे कहते हैं–

किन्तु हम हैं द्वीप।

हम धारा नही है।

स्थिर समर्पण है हमारा/हम सदा से द्वीप हैं स्रोतस्विनी के

किन्तु हम बहते नहीं है क्योंकि बहना रेत होना है।

हम बहेंगे तो रहेंगे ही नहीं।

पैर उखड़ेंगे/प्लवन होगा/ढहेंगे/सहेंगे/बह जायेंगे।

और फिर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।

अनुपयोगी ही बनायेंगे।[12]

यहाँ समाज एवं व्यक्ति के बारे में कवि स्पष्ट धारणा है कि जिस तरह नदी में द्वीप के विलय हो जाने से न तो द्वीप की अर्थवत्ता रहती है और न ही नदी का विकास होता है क्योंकि बहना रेत होना है, उसी तरह व्यक्ति' की इयत्ता का खत्म होना, सब कुछ खत्म हो जाना है। अज्ञेय व्यक्ति के निर्माण में समाज के योगदान को भी स्वीकार करते हैं। वे व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई मानकर इसे पूर्ण समर्थ देखना चाहते है क्योंकि व्यक्ति के समर्थ होने से समाज स्वमेव समर्थ हो जायेगा।

आज हम जिस युग में जी रह हैं वहाँ वैज्ञानिक प्रगति से हमारी मान्यताओं और उनके आधारों में मूलभूत परिवर्तन आ गया है किन्तु हम इस परिवर्तन को उतनी ही तीव्रता से जीवन और व्यवहार में स्वीकार नही कर पा रहे हैं। इस सम्बन्ध में अज्ञेय का मानना है कि यांत्रिक उन्नति आत्मा को प्रेरणा नही देती जबकि यह प्रेरणा मानव जीवन के लिए आवश्यक है। यांत्रिक उन्नति के परिवेश ने मनुष्य के समक्ष एक नया संकट उत्पन्न किया है जो पहले कभी न था। इसे अज्ञेय का कवि मन बखूबी महसूस करता है–

किन्तु यहाँ आसपास/घुमड़न है, त्रास है।

मशीनों की गड़गड़ाहट में।
भोली (कितनी भोली) आत्माओं की
अनुरणन की मोहमयी प्यास है।
यंत्र हमें दलते हैं/और हम अपने को छलते हैं
थोड़ा और खट लो थोड़ा और पिस लो–
यन्त्र का उद्देश्य तो बस अवकाश है।
और अवकाश मात्र अवकाश है।
बाहर हैं वे–वही तारे, वही एक शुक्र तारा
वही खूनी ममता से भरा आकाश है।[13]

स्पष्ट है कि कवि यहाँ यांत्रिक परिवेश और प्राचीन परिवेश को नये सन्दर्भ में विचित्र करते हुए यह बताना चाहता है कि आज के वैज्ञानिक परिवेश में व्यक्ति प्रकृति से लगातार दूर होता जा रहा है और मानसिक शान्ति खोता जा रहा है। इसी प्रकार कारखानों और उनमें उबलते हुए आदमी की पीड़ा को व्यक्त करते हुए अज्ञेय कहते हैं–

पहाड़ियों से घिरी हुई इस छोटी सी घाटी में
ये मुँहझोसीं चिमनियाँ बराबर
धुआँ उगलती जाती हैं
भीतर जलते लाल धातु के साथ
कमकरों की दुस्साध्य विषमताएँ भी
तप्त उबलती जाती हैं।[14]

अर्थात जिस उद्यम से मानव–मुक्ति सम्भव थी वही उद्यम बदलते परिवेश में मानव के शोषण एवं पीड़ा को और बढ़ाते जाते हैं, उसे छलते जा रहे हैं।

इसी प्रकार अज्ञेय की कविता पश्चिम के अंधानुकरण पर भी व्यंग्य करती है और भारतीयों के नकली व्यवहार पर भी। आज के वातावरण में नकलीपन एक विशेषता बन गया है, आज प्रेम भी छल बन गया है और मुस्कराहट के पीछे घृणा छिपी है अर्थात् पूरे मानवीय सम्बन्धों में कृत्रिमता एवं नकलीपन उतर आया है। यह कटु सत्य है जिस पर अज्ञेय लिखते हैं–

नहीं, ये मेरे देश की आँखें नही हैं
पुते गालों के ऊपर/नकली भवों के नीचे
छाया प्यार के छलावे बिछाती
मुकुर से उठायी हुई/मुस्कान मुस्कुराती
ये आँखें– नही मेरे देश की नहीं हैं–
तनाव से झुर्रियाँ पड़ी कोरों की दरार से।
शरारे छोड़ती घृणा से सिकुड़ी पुतलियाँ–
नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं–[15]

'नही, ये मेरे देश की आखें नही हैं' कहकर कवि यह बताना चाहता है कि वह अपने देश की वास्तविक आँखों को पहचानता है अर्थात अपनी जातिगत अस्मिता और जीवन व्यवहार की पहचान उसे है। नकली और असली से परिचित कवि की यही दृष्टि परम्परा और नवीनता के फर्क को स्पष्ट करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अज्ञेय प्रयोगशील मानसिकता के कवि हैं। वे अपनी पूर्व की काव्य परम्परा की सदैव जाँच–पड़ताल करते हुए मानव को उसके यथार्थ रूप में चित्रित करते है। अहं, प्रेम, व्यक्ति और समाज पर अज्ञेय ने अपनी लेखनी चलायी और कविता द्वारा अपने समय के उद्घाटित नये जीवन सत्यों को नवीन संदर्भों में परखा। इसीलिए अज्ञेय को हिन्दी जगत् में आधुनिक साहित्य की शुरुआत करने वाला कवि माना जाता है। वे घोर परम्परावादी और अपने को जनवादी कहने वाले एवं यथार्थ साहित्यिक मूल्यों की स्थापना करते हैं।

सन्दर्भ

1. अज्ञेय : स्रोत और सेतु (प्र0सं0), पृष्ठ–118।

2. सच्चिदानंद वात्सायन : त्रिशंकु (सं0–1973), पृष्ठ–27।
3. अज्ञेय : पूर्वा' भग्न दूत (सं0–1965), पृष्ठ–26।
4. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–43।
5. अज्ञेय : पूर्वा' बंदी स्वप्न (सं0–1967), पृष्ठ–49।
6. अज्ञेय : क्योंकि मैं उसे जनता हूँ (प्र0सं0), पृष्ठ–47।
7. सच्चिदानंद वात्सायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (प्र0सं0), पृष्ठ–229।
8. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–132।
9. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–216।
10. अज्ञेय : पूर्वा, पृष्ठ–238।
11. अज्ञेय : कितनी नावों में कितनी बार (द्वि0सं0), पृष्ठ–32।
12. सच्चिदानंद वात्सायन : आधुनिक हिन्दी साहित्य (पृ0सं0), पृष्ठ–97।
13. अज्ञेय : आत्मनेपद (प्रं0सं0), पृष्ठ–263।
14. अज्ञेय : अरी ओ करुणा प्रभामय (प्रं0सं0), पृष्ठ–45।
15. अज्ञेय : नदी की बाँक पर छाया (प्रं0सं0), पृष्ठ–11।